VIVEKOTSAV

Inculcating The Spirit Of Vivekananda

स्वामी विवेकानन्द जयंती केअवसर पर
५१वीं अंतर विद्यालय वक्तृत्व स्पर्धा - २०२५

हिंदी

RAMAKRISHNA MATH

&

RAMAKRISHNA MISSION

Swami Vivekananda Chowk, 12th Road, Khar (W), Mumbai - 400052
Tel.: 022-6181 8000 / 6181 8002
Email : vivekotsavrkm@gmail.com Website : www.mumbairkm.org

हिन्दी ज्युनियर (कक्षा ५ से ७)

विशेष सूचना :

१. प्रत्येक विद्यार्थी को ३ मिनट दिये जायेंगे।

२. कृपया निर्धारित विषय तक सीमित रहिए।

३. निर्णायकों का मूल्यांकन

(अ) विषय : ३० अंक (ब) स्पष्टता : १० अंक (क) प्रभाव : १० अंक

१. नरेन की अनौपचारिक शिक्षा

प्रथम शिक्षा सदा माँ के चरणों में ही होती है, और भुवनेश्वरी की अपने पुत्र को सुशिक्षित करने की प्रबल इच्छा थी। उनकी गोद में ही नरेन्द्रनाथ को पहली बार देवी-देवताओं के महात्म्य तथा भारत के ऋषि-मुनियों और अपने पूर्वजों की महानता का परिचय मिला। इन्हीं पूर्वजों में उनके दादाजी, संन्यासी दुर्गाप्रसाद भी थे। रामायण और महाभारत की कथाओं को भी उन्होंने सर्वप्रथम अपनी माँ से ही सुना। दत्त घराने में ये महाकाव्य प्रत्येक दिन दोपहर में पढ़े जाते थ। कोई एक वृद्ध महिला और कभी स्वयं भुवनेश्वरी देवी सस्वर पढ़तीं थीं, घर की महिलाएँ नित्यकर्मों से निवृत्त होकर उनके चारों ओर बैठकर कथा सुनतीं थीं। इस छोटीसी सभा में उपद्रवी नरेन पूरे वाचन काल में शांत, ध्यान-मग्न सुनते मिलते। इसमें कोई संशय नहीं था, कि इन महाकाव्यों की कथाओं ने उनके मन पर गहरा प्रभाव छोड़ा।

नरेन ने अपनी नानी और परनानी से भी अनेक बातें सीखीं। उनके छोटे भाइयों में से एक, महेन्द्रनाथ ने बाद में लिखा कि उनकी परनानी वैष्णव संप्रदाय की अनुयायी थीं और भागवतम् और वैष्णव कथा-सागर से अनेक उपदेश कथाओं एवं प्रसंगों को जानतीं थीं। नानी भागवतम् से विविध प्रसंग सुनाया करतीं थीं।

सच तो यह था कि आगामी जीवन में स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य देशों में अपने श्रोताओं को जो कहानियाँ सुनाई उनमें से अधिकांश कहानियाँ उन्होंने अपनी बाल्यावस्था में इन्हीं दो प्रौढ़ महिलाओं से सुनी था।

यहाँ तक कि बालक नरेन की शिक्षा में सड़कों पर गाने वालों का भी योगदान रहा। वे गायक चित्त को मोह लेते। कभी वे बड़ी संख्या में - शायद पूरा परिवार ही कठोर परिस्थितिवश आता। किन्तु वे सदैव आनन्दमय एवम् उल्लास से भरपूर होते थे। उनमें से कुछ लोग देवीमाँ की प्रतिमा लेकर आते थे या कभी ऐसा भी होता कि पिता अपने पुत्र को श्रीकृष्ण के रुप में सजा कर लाता और जब वह नृत्य करता तो उसकी चाँदी की पैंजनी बजती और पिता नगाड़े या डफली पर अपनी गहरी गंभीर वाणी में गाता। एक घर से दूसरे घर गायक ईश्वर की लीलाओं की पवित्र-पावन कथाओं को आनन्द से गाते हुये जाते।

यद्यपि ये लोग भिक्षुक होते पर हर्षोन्माद में इतने अधिक आनन्द विभोर होते कि वे लोगों के आध्यात्मिक ज्ञान की वृद्धि करते। प्राय: वे नरेन के घर आते और उनकी माँ अपने पुत्र के हित में उनका सदैव स्वागत करतीं क्योंकि उनका विश्वास था कि जितनी घनिष्ठता से एक बच्चे को अधिकाधिक बार गहराई के साथ राष्ट्रीय-संस्कृति से परिचित कराया जाये उतना ही वह बेहतर और सच्चा इंसान बनेगा।

परन्तु विद्यालयों में सभी प्रकार के संगी-साथी मिलते हैं। अत: थोड़ेही दिनों में नरेन ने कुछ ऐसी शब्दावली अपनायी जो परिवार के शिष्टाचार के विपरीत था। पूरे परिवार ने निर्णय लिया कि वह अब कदापि विद्यालय नहीं जायेगा। उसके स्थान पर एक निजी शिक्षक रखे गये जो पूजा-घर में नरेन एवं अन्य लड़कों - जिनमें कुछ उनके चचेरे-ममेरे भाई थे और कुछ उनके पिता के मित्रों के पुत्र, पढ़ा करते थे।

शीघ्र ही नरेन की विशिष्ट अद्‌भुत बौद्धिक क्षमता की पहचान मिल गई। जबकि अन्य लड़के अक्षर-ज्ञान में उलझे हुए थे, उन्होंने लिखना और पढ़ना सीख लिया। उनकी स्मरणशक्ति विलक्षण थी। कक्षा में पढ़ते समय उनका अपना एक अनूठा ढंग था, आँखें मूँदकर अडिग बैठना या लेट जाना। जो निजी शिक्षक रखे गये थे वे उनकी इस क्षमता को पहले तो समझ नहीं

पाये और अंतत: बहुत क्रोधित हो गये। उन्होंने अपने इस छात्र को बुरी तरह झिंझोड़कर निर्दयता से उनकी सहज निद्रा से उठाया। नरेन ने आघातित आश्चर्य से अपनी आँखें खोली। अपने शिक्षक के क्रोधपूर्ण वचन सुने। फिर, आत्मरक्षा में, उन्होंने पूर्व घंटे में पढ़ाया गया पाठ पूरा का पूरा अक्षरश: सुना दिया। इस घटना के बाद, शिक्षक सदैव अपने इस शिष्य को सम्मान से देखते क्योंकि छात्रों के साथ अपने दीर्घ सम्पर्क में उन्होंने ऐसी अद्‌भुत स्मरणशक्ति और किसी में नहीं देखी थी।

यद्यपि नरेन की शालेय शिक्षा इस प्रकार शुरु हुई पर माँ के चरणों में बैठ, उनकी शिक्षा निरन्तर चलती रही। उन्होंने अपनी माँ से बंगला वर्णमाला सीखी और प्यारीचरण सरकार की लिखी 'फर्स्ट बुक ऑफ इंग्लिश' भी पढ़ी। अपनी माँ से ही उन्होंने जीवन के संघर्षों से झूँझते हुये अपना नैतिक स्तर ऊँचा उठाये रखना तथा ईश्वर को ही परम आधार मानकर उनके चरणों में स्वयं को समर्पित करना सीखा। माँ ने नरेन को पूरे जीवन में पवित्र बने रहना भी सिखाया। अपने सम्मान की रक्षा करें और दूसरे के सम्मान का कभी उल्लंघन न करें। सदैव शान्तमन रहना, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर अपने हृदय को सुदृढ़ भी बना लेना।

नरेन्द्रनाथ जीवनपर्यन्त अपनी माता को आंतरिक हृदय से प्यार करते रहे और उनके उपदेशों को याद करते रहे। वे कहा करते थे कि जो अक्षरश: अपनी माँ की पूजा नहीं कर सकते वे कभी महान नहीं बन सकते। कईं अवसरों पर उन्होंने गर्व से उद्‌घोषणा की - मैं अपने ज्ञान के प्रस्फुटन के लिए अपनी माँ का चिरऋणी हूँ।

उनके परिवार के अन्य सदस्यों ने भी नरेन की शिक्षा में योगदान दिया। रात्रि के समय नरेन अपने एक वयोवृद्ध सम्बन्धी नृसिंह दत्त के पास सोया करते थे। नृसिंह दत्त रामचन्द्र दत्त के पिता थे, जो आगे चलकर श्रीरामकृष्ण के भक्त बन गये थे। नृसिंह दत्त संस्कृत कथाओं के महान ज्ञानी थे, उनके मत में युवक के चरित्र एवं मन के प्रशिक्षण के लिए कठिन बौद्धिक

विषयों को कंठस्थ कराना ही सर्वोत्तम रास्ता था। अत: रात्रि में वे बालक नरेन को संस्कृत व्याकरण 'मुग्धबोध' के सूत्र सिखाते थे। उनके परिवार की वंश-परंपरा, देवी-देवताओं की स्तुति के साथ ही, रामायण और महाभारत के विस्तृत उद्धरण भी सुनाते थे। इस प्रकार एक वर्ष की अवधि में ही नरेन को संस्कृत का पर्याप्त ज्ञान हो गया और निश्चित ही यह बाल्यावस्था का प्रशिक्षण बाद के वर्षों में उनके संस्कृत ज्ञान-पिपासा का एक मूल कारण बना।

नरेन के पिता ने भी पुत्र की शिक्षा में उल्लेखनीय सहयोग दिया। यह उनका ही आग्रह था कि बालक को संगीत सीखना चाहिए, क्योंकि वे संगीत को विशुद्ध आनन्द का स्त्रोत मानते थे। संभवत: नरेन्द्रनाथ को एक निपुण गायक बनने में उनके परिवार की संगीत के प्रति गहरी रुचि बहुत सहायक बनी।

विश्वनाथ का अपनी संतान के प्रति व्यवहार अत्यंत बुद्धिमत्तापूर्ण था। वे मानते थे कि बच्चों में आत्म-सम्मान एवम् शिष्टाचार की भावना विकसित करने के लिये उन्हें प्रेरित करना चाहिये। यदि कोई बच्चा अनुचित व्यवहार करता था तो वे उसे डाँटते नहीं थे, अपितु वांछित सुधार लाने के लिये, उसके मित्रों के सामने उसका अभद्र व्यवहार दिखाकर उसे उपहास का पात्र बना देते थे। उदाहारणार्थ : एक दिन नरेन ने अपनी माता के साथ अत्यन्त उद्दण्ड व्यवहार किया। पिता ने पुत्र को डाँटने के बजाय उसके कमरे के द्वार पर लिख दिया, आज नरेन बाबू ने अपनी माता से ये शब्द कहे। इसके आगे जो शब्द नरेन ने कहे थे, वे जोड़ दिये। जब जब नरेन और उसके मित्र उस कमरे में जाते थे उन्हें इन शब्दों का सामना करना पड़ता था। कुछ ही समय में नरेन में पश्चात्ताप के लक्षण दिखायी दिये।

नरेन के घर में उसके पिताजी के कईं मुवक्किल आया करते थे। वे साथ बैठ गपशप करते थे, जब तक की उनकी परामर्श की बारी नहीं आती। वे विभिन्न जाति के थे। सबको अपना अलग-अलग हुक्का दिया जाता। उनमें एक मुसलमान भी था जिसके साथ नरेन की विशेष दोस्ती थी। जातिभेद

बालक के लिये एक रहस्य था। एक जाति का व्यक्ति दूसरे जाति के व्यक्ति के साथ भोजन क्यों नहीं कर सकता था अथवा उसका हुक्का क्यों नहीं पी सकता था? यदि कोई ऐसा करे तो क्या होगा? क्या उस पर छत आ गिरेगी या वह अचानक मर जायेगा? उसने स्वयं जाँच करनी चाही। वह साहस के साथ सभी हुक्कों के पास गया और एक एक कश प्रत्येक में से खींचा। नहीं! वह मरा नहीं। इतने में उसके पिता ने प्रवेश किया और पूछा, "मेरे बच्चे, तुम क्या कर रहे हौ?" "ओह, पिताजी! मैं परीक्षा कर रहा था कि यदि मैं जाति भंग करुँ तो क्या होगा? कुछ भी नहीं हुआ।" पिताजी दिल खोलकर हँसे और अपने निजी कक्ष में चले गये। उनकी मुखमुद्रा सबकुछ समझने का संकेत दे रही थी।

वे लोग, जो संसार की विचारधारा को बदलते हैं, जैसा कि प्लेटो और अरस्तु ने किया, या जो सिकंदर और सीज़र की तरह संसार की नियति बदलते हैं, वे अपने बचपन से ही अपनी शक्ति के प्रति जागरुक होते हैं। उनमें उस आगामी महानता की अंत:प्रेरणा स्वभाव से ही जागृत रहती है। तथा भविष्य में होने वाली अपनी महान उपलब्धियों का उन्हें स्वत: आभास हो जाता है।

नरेन्द्रनाथ ने भी, स्वयं में छिपी आत्मा की महानता को अनुभूत किया। उन्होंने उन बातों को देखा जिन्हें उनके समवयस्क बालक देख भी नहीं पाते थे। तथा अपने स्वप्न को साकार करने में उन्हें किस संघर्ष का सामना करना पड़ेगा, यह वे अभी से अपनी अपरिपक्व परन्तु निश्चित बालदृष्टि से समझ पा रहे थे।

• • •

हिन्दी ज्युनियर (कक्षा ५ से ७)
विशेष सूचना :

१. प्रत्येक विद्यार्थी को ३ मिनट दिये जायेंगे।
२. कृपया निर्धारित विषय तक सीमित रहिए।
३. निर्णायकों का मूल्यांकन
(अ) विषय : ३० अंक (ब) स्पष्टता : १० अंक (क) प्रभाव : १० अंक

२. दयालु नरेन

नरेन्द्रनाथ की एक विशेषता थी, दूसरों के प्रति उनकी सहृदयता। उनके साथियों के लिये वे करुणास्वरुप थे। समूह बनाकर कभी पर्यटन स्थलों में घूमने निकलने पर यदि कोई घायल या अस्वस्थ हो जाता था तो वे उसकी परिचर्या के लिए आनन्द, मौजमस्ती का उद्देश्य ही त्याग देते। उदाहरणार्थ, एक दिन वे बीसेक बालकों के साथ कलकत्ता किला देखने गये थे। उन बालकों में से एक ने दर्द की शिकायत की। अन्य बालक उसपर हँसते हुये आगे बढ़ गये। अकेला वह बालक भूमि पर बैठ गया, उसका दर्द बढ़ता जा रहा था। नरेन सबके साथ आगे चले गये थे पर अचानक मुड़ते हुये उन्होंने कहा, "यह सम्भव है कि वह बालक गम्भीर रुप से अस्वस्थ हो, तुम लोग चलते रहो। हममें से एक को उसके पास रहना आवश्यक है। अतएव मैं जाऊँगा।" उन्होंने ठीक उसी समय अपने कदम वापिस लिए। लड़के को ज्वर ने जकड़ लिया था। नरेन ने सहारा देकर उसे लगभग उठाकर पास में खड़ी एक गाड़ी में बिठाया और घर ले गये।

नरेन और उसके मित्र, श्री. नवगोपाल मित्रा की व्यायामशाळा के सदस्य थे। इस व्यायामशाला का समस्त प्रबन्ध लगभग उन्हीं लोगों के हाथ में था। एक दिन जब वे सब एक अत्यन्त भारी कसरत के खम्भे को लगाने का प्रयत्न कर रहे थे तब वहाँ बड़ी भीड़ देखने के लिये जमा हो गई। उसमें एक अंग्रेज़ नाविक भी था। नरेन ने उससे सहायता माँगी। लेकिन जब अनुग्रहित नाविक खम्भ उठाने में लड़कों की सहायता कर रहा था तो उसपर खम्भ गिर गया और वह बेहोश हो गया। नरेन व एक या दो मित्रों को छोड़कर उस

घटनास्थल से लगभग सभी भाग खड़े हुये, यह सोचकर कि नाविक मर चुका है। तुरन्त ही नरेन ने अपनी धोती का एक टुकड़ा फाड़ा तथा घाव पर बाँध दिया। नाविक के चहरे पर पानी छिड़क धीरे-धीरे हवा करी। जब नाविक को होश आया, नरेन और मित्रों ने उसे उठाया और समीप के विद्यालयगृह में ले गये। एक चिकित्सक बुलाया गया तथा नवगोपाल मित्रा को सूचित किया गया। एक सप्ताह की परिचर्या के पश्चात नाविक स्वस्थ हो गया। नरेन ने उसको थोड़ीसी धनराशि दी जो उसने अपने मित्रों के साथ एकत्रित की थी।

परिव्राजक संन्यासियों के प्रति नरेन का प्रगाढ़ आकर्षण था। जब भी कोई संन्यासी उनके द्वार पर आते, वह बालक आकर्षित हो उनकी ओर भागता था। एक दिन एक साधु ने आकर भिक्षा माँगी। नरेन के पास हाथ की कसीदाकारी की हुई धोती मात्र थी जो उसने कमर पर लपेट रखी थी और उसे इस नये वस्त्र पर बड़ा अभिमान था क्योंकि शैशवावस्था को पार करने पर मिला यह उसका पहला वस्त्र था। परन्तु नरेन ने बेझिझक वह वस्त्र साधु को दे दिया। उस वस्त्र को अपने सिर पर लपेट तथा बालक को आशिर्वाद देकर साधु चला गया। यह पूछे जाने पर कि वह वस्त्र कहाँ गया, नरेन ने उत्तर दिया, "साधु भिक्षा माँग रहा था, मैंने वह वस्त्र उसे दे दिया।" उनके घर अनेक साधु आते थे क्योंकि वे जानते थे कि वहाँ उनका सदैव आदर सत्कार होगा। पिता विश्वनाथ दत्त अत्याधिक आतिथ्य-प्रिय एवं सेवाभावी व्यक्ति थे और उनके पास उनके स्वयं के पिता की स्मृति थी जो संन्यासी बन गये थे। परन्तु उपरोक्त घटना के पश्चात नरेन पर कड़ी निगरानी रखी जाने लगी। जब कभी कोई साधु उनके घर आता था, उसके चले जाने तक, नरेन को बन्द करके रखा जाता था। परन्तु इससे वह बालक किंचित भी विचलित नहीं होता। कमरे में जो कुछ होता था वह खिड़की से याचक को दे देता था। और इस प्रकार अपने मन की करके हर्ष के साथ नाचने लगता था।

नरेन के पास बहुत से पालतू पशु-पक्षी थे, जिनके साथ खेलना उसे बहुत पसंद था। एक बन्दर, एक बकरी, एक मोर, कबूतर तथा दो या तीन सफेद चूहे। अपने परिवार की गऊ से उसे विशेष प्रेम था। जब किसी उत्सव

पर उसकी बहनें गऊमाता को फूलमालाओं से और माथे पर सिन्दूर का टीका लगाकर सजातीं थीं तथा उसे प्रणाम करतीं थीं, नरेन भी इस सब में उनके साथ सम्मिलित होता था। अपने नन्हें नन्हें हाथों से वह गऊ को सहलाता था और उससे मधुरता से बातें करता था।

उन दिनों में यह प्रचलन था कि जनरल असेम्बली की संस्था उन विद्यार्थियों की सहायता करे जो धनाभाव के कारण आवश्यक शुल्क नहीं दे सकते थे, तथा कुछ ऐसा भी प्रावधान था कि विशेष विद्यार्थियों के लिये महाविद्यालय को देय धनराशि माफ कर दी जाय। परन्तु आवेदक विद्यार्थी को शुल्कमुक्ति की आवश्यकता है यह प्रमाणित करने पर ही उसका नाम नि:शुल्क विद्यार्थियों की नामावली में लिखा जा सकता था। श्री. राजकुमार को, जो एक वरिष्ठ बाबू थे, इन मामलों में निर्णय लेने का अधिकार था। अब ऐसा हुआ कि नरेन्द्रनाथ के एक सहपाठी, हरिदास चट्टोपाध्याय, परीक्षा के पूर्व कठिन आर्थिक संकट में थे। न तो वे महाविद्यालय को देय धनराशि दे सकते थे और न ही परिक्षा-शुल्क देना उनके लिये सम्भव था। नरेन्द्रनाथ ने अपने मित्र को आश्वासन दिया कि वे देखेंगे कि उनके लिये क्या करना सम्भव है।

एक दो दिन के पश्चात जब राजकुमार के कार्यालय में देय धनराशि और शुल्क देने के लिये विद्यार्थियों की भीड़ जमा थी, नरेन्द्रनाथ उस भीड़ में से रास्ता बनाते हुये राजकुमार के पास पहुँचे और उन्होंने कहा, "महोदय! हरिदास अपनी देय धनराशि देने में असमर्थ है। क्या आप उसे शुल्क से मुक्त करने की कृपा करेंगे? यदि आप उसे परीक्षा में जाने की अनुमति देंगे तो वह उत्तम अंकों से उत्तीर्ण होगा अन्यथा सब व्यर्थ हो जायेगा।" राजकुमार ने उत्तर में कहा, "तुमने जो धृष्टता से सिफारिश की है उसकी आवश्यकता नहीं है। बेहतर होगा कि तुम अपने बारे में सोचो। जब तक वह अपनी देय धनराशि नहीं देता, मैं उसे परीक्षा के लिये नहीं जाने दूँगा।" इस प्रकार धुतकारे जाने पर नरेन्द्रनाथ वहाँ से लौट आये। स्वाभाविक था कि उनके मित्र अत्यन्त हताश हो गये। नरेन्द्र ने यह कहते हुये उन्हें सांत्वना दी, "तुम क्यों निराश हो रहे हो।

इन वृद्ध महाशय को तो इसी प्रकार लोगों का अपमान करने की आदत है। मैं तुमसे कह रहा हूँ कि मैं तुम्हारे लिये कोई न कोई रास्ता ढूँढ़ निकालूँगा। अतएव तुम निश्चिंत रहो।"

महाविद्यालय के समय के पश्चात, घर लौटने के बजाय नरेन्द्रनाथ ने अफीम चरस के अड्डे ढूँढ़े, जहाँ राजकुमार अक्सर जाते थे। जैसे जैसे शाम का धुंधलका छाने लगा, आशा के अनुरुप ही राजकुमार छुपते-छुपाते अड्डे की ओर बढ़ते दिखाई दिये। आश्चर्यजनक फुर्ति से नरेन्द्रनाथ ने अचानक स्वयं को वृद्ध व्यक्ति के समक्ष प्रस्तुत किया और उनके मार्ग में हो गये। यद्यपि ऐसे स्थान पर और उस समय नरेन्द्रनाथ को देखकर राजकुमार विस्मित अवश्य हुए पर विचलित हुए बिना यथासंभव शांति से पूछा, "क्या बात है दत्त? इस समय तुम यहाँ कैसे?" नरेन्द्रनाथ ने हरिदास की ओर से पुन: अपनी याचना दोहराई और साथ ही यह कहा कि यदि उनकी प्रार्थना अस्वीकार की गई तो वे राजकुमार के अफीमखाने जाने की बात को सार्वजनिक कर देंगे। वृद्ध महाशय ने कहा, "अरे बेटा! तुम क्यों इतना अधिक क्रोधित होते हो? जो तुम चाहते हो वह हो जायेगा। क्या मैं कभी तुम्हारी प्रार्थना अनदेखी कर सकता हूँ?" और उन्होंने यह अनुमति दे दी की हरिदास की महाविद्यालय को देय धनराशि क्षमा कर दी जायेगी परन्तु परिक्षा-शुल्क देना आवश्यक होगा। नरेन्द्रनाथ इस निर्णय से सहमत हो गये और उनसे विदा ली।

अगली सुबह तड़के ही सूर्योदय के पूर्व नरेन्द्रनाथ हरिदास के घर गये और दरवाजा खटखटाकर हरिदास से कहा, "आओ, ईश्वर का धन्यवाद करो। तुम्हारा काम हो गया है, तुम्हें महाविद्यालय को देय धनराशि नहीं देनी पड़ेगी।" तदुपरान्त अपनी नकल उतारने की कला तथा अभिनय दक्षता के साथ उन्होंने पूर्व सन्ध्या की घटना कह सुनाई और हँसी के फौआरे फूट पड़े।

आगे चलकर स्वामीजी निर्धनों के प्रति अपनी सहानुभूति कैसे व्यक्त करें, यह अपने आचरण से प्रदर्शित करते थे। निम्नलिखित घटना वैसा ही एक दृष्टान्त है।

एक बार स्वामीजी रेलगाड़ी से यात्रा कर रहे थे, तब उबले चने बेचने वाला एक निर्धन मुसलमान उनके डिब्बे में चढ़ गया। जैसे ही स्वामीजी ने उसे देखा, अपने साथी ब्रह्मचारी से वे चने के विषय में बातें करने लगे। स्वामीजी ने कहा, "जानते हो - चना तुमको शक्तिशाली बनाता है।" और चनेवाले की ओर संकेत करके उन्होंने ब्रह्मचारी से कहा, "क्यों न कुछ चने खरीद लें?" ब्रह्मचारी स्वामीजी के स्वभाव से भलीभाँति परिचित थे। यह बात वे सहजता से समझ गये कि स्वामीजी उस निर्धन व्यक्ति की सहायता करना चाहते थे। उन्हें चने नहीं खाने थे। अतएव ब्रह्मचारी ने एक पैसे के चने खरीदे परन्तु उस व्यक्ति को चार आने दिये। स्वामीजी की दृष्टी अत्यन्त तीक्ष्ण थी। उन्होंने ब्रह्मचारी से पूछा, "तुमने उसको कितने पैसे दिये?" ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, "चार आने"। तब स्वामीजी ने स्नेह से उनसे कहा, "वत्स! वह तो कम है। उसके घर पर पत्नी और बच्चे हैं। उसको एक रुपया दो।" ब्रह्मचारी ने स्वामीजी के आदेश का पालन किया।

• • •

हिन्दी ज्युनियर (कक्षा ५ से ७)
विशेष सूचना :

१. प्रत्येक विद्यार्थी को ३ मिनट दिये जायेंगे।
२. कृपया निर्धारित विषय तक सीमित रहिए।
३. निर्णायकों का मूल्यांकन
(अ) विषय : ३० अंक (ब) स्पष्टता : १० अंक (क) प्रभाव : १० अंक

३. जन्मजात नेता

अल्पायु में ही नरेन ने अपने साथियों के मध्य अपने को नेता मनवा लिया था। जब भी उन्हें अवसर प्राप्त होता, वे उनका नेतृत्व करते। पौष माह के अन्तिम दिन अर्थात मकर संक्रान्ति का दिन एक ऐसा ही अवसर बन गया।

इस छुट्टि के दिन बच्चे गंगामैया की पूजा करते हैं, और इस दिन गंगा के पवित्र जल में स्नान शुभ मानते हैं। नरेन ने यह उत्सव मनाने का निश्चय किया और पिताजी से इस बारें में अनुमति तथा आवश्यक धनराशि भी ले ली। फिर उन्होंने लड़कों को एकत्रित किया। उनके पिता ने गुरुमहाशय को आदेश दिया कि बालकों को गंगा के गीत सिखा दें। निश्चित दिन दत्त के घर से नरेन के नेतृत्व में, नन्हें बालकों का जुलूस निकला। लहराते झन्डें और फूलों की मालाएँ हाथ में लिये, गलियों से गुजरते हुए, वे गीत गाते गंगा की ओर चले। जैसे ही वे गंगातट पर पहुँचे, सब समवेत स्वर में वही गाना गाने लगे जिसे बंगाल का हर हिन्दू बच्चा अच्छी तरह जानता है - 'जय गंगे माँ, जय गंगे माँ' और फिर फूलों की मालाएँ बहते गंगा जल में समर्पित कर दी। पुन: सन्ध्या समय वे गंगाकिनारे पहुँचे। केले के डन्ठल में से परतें निकालकर छोटी-छोटी नावें बनाई और उनके मस्तूल पर पूजा के श्रद्धा दीप बाँधकर पानी में बहा दिये । कैसा सुन्दर दृष्य था! नदी में दूर तक खिलौने वाली यह छोटी नौकाएं तैर रहीं थीं। नरेन का समूह, ऐसे अनेकों समूहों में से एक था। मीलों तक गंगा मैया का जल इन बच्चों के स्नेह से जगमगा रहा था।

अपने जीवनकाल में नरेन जहाँ भी गये, नेता के रुप में स्वीकृत रहे। अपने समकालीन व्यक्तियों में वे अतुलनीय थे। युवावस्था में, पूर्व हो

या पश्चिम, अद्वितीय, बुद्धिशाली, अपने गुरु के चरणों में समर्पित शिष्यों के वे राजकुमार थे। नरेन अपने बाल सखाओं के राजा थे। वे उनकी दुनिया के सर्वेसर्वा थे। "मैं सम्राट हूँ, राजाओं का राजा," नरेन यह घोषणा करते हुए आँगन से पूजागृह के बरामदे की सीढ़ियों पर दौड़ते हुए चढ़ जाते और एक राजा की भाँति आसन ग्रहण करते। नीचे की सीढ़ी की ओर संकेत करके वे अपने दो सखाओं से प्रधान-मंत्री और सेनापति के रुप में सामने खड़े होने को कहते। नीचे की अन्य सीढ़ी पर अन्य पाँच सहायकों को मांडलिक राजकुमारों के रुप में खड़ा करते। अपने दरबारियों को वे राजकुमारों से एक सोपान नीचे बैठने की सुविधा प्रदान करते। फिर शुरु होता औपचारिक दरबार। एक-एक करके राजकुमार, राज्य के उच्च अधिकारीगण और दरबारीजन उपस्थित सम्राट को उचित पारम्पारिक रीति से साष्टांग नमन करते हुए, 'सौर प्रभामंडळ के पुत्र', 'धर्मरक्षक' और 'पृथ्वी एवं समुद्र के स्वामी' आदि संबोधनों से राजा की प्रशस्ति करते। इस अनुष्ठान के पश्चात राजा अपनी प्रजा का कुशलमंगल पूछते और शिकायतें सुनते। अक्सर किसी अपराधी को समक्ष लाया जाता और उस पर लगाये गंभीर आरोपों को प्रमाणित किया जाता। तत्पश्चात महामहिम के न्यायपूर्ण उद्‌गार फूट पड़ते, "सिपाहियों! इसका सिर धड़ से अलग कर दिया जाय!" और तब दस सिपाही अपराधी पर टूट पड़ते। ऐसे चलता था नरेन का प्रिय खेल 'राजा और दरबार,' जिसमें पूर्ण राजसी ठाठ के साथ वे न्याय का संचालन करते थे तथा हल्कीसी अवज्ञा या अविनय को अपनी भ्रू-भंगिमा द्वारा अनुचित करार देते थे।

यह पहले ही उल्लेख कर दिया गया है कि नरेन अपने साथियों के नेता थे। वास्तव में, नेतृत्व के गुण उनमें जन्मजात थे और अपने प्रारम्भिक काल में ही उन्होंने यह सत्य प्रमाणित कर दिखाया था कि नेतृत्व का अर्थ है आत्मत्याग। जब वे लगभग छः वर्ष के थे, एक दिन अपने एक सम्बन्धी बालक के साथ चाड़ोक का मेला देखने गये। यहाँ भगवान शिव पूजे जाते हैं। मेले में उन्होंने शिव की छोटी-छोटी मूर्तियाँ खरीदीं। सन्ध्या समय जब दोनों घर लौट रहे थे, भीड़ में वे कुछ आगे-पीछे हो गये। उसी क्षण एक

घोड़ा-गाड़ी तेज़ी से उस ओर आई। नरेन समझ रहे थे कि उनका साथी उनके पीछे ही है, इसीलिए शोर सुनकर जैसे ही पीछे मुड़े, उन्होंने वह भयंकर दृश्य देखा कि उनका छोटा साथी जीवन-मरण के बीच झूलता, बीच सड़क पर भयभीत खड़ा है और घोड़ा-गाड़ी उस पर से गुजरने ही वाली है। तत्क्षण अपने खिलौने बायी-काँख के नीचे दबाकर नरेन उस लड़के की सहायता करने दौड़े। अपनी सुरक्षा की परवाह न करके, दाहिने हाथ से लड़के को पकड़कर, लगभग घोड़ों के खुरों के बीच से खींच लिया। आस-पास खड़े लोग स्तब्ध थे। खतरा इतना अचानक सम्मुख आया था कि किसी के पास उस बालक को बचाने दौड़ने का भी अवसर न था। कुछ ने नरेन की पीठ थपथपायी, कुछ ने आशिर्वाद दिया। जब वे घर पहुँचे और माँ ने सारी घटना सुनी तो हर्षवेग से उनकी आँखें छलक उठीं; वे बोलीं, "मेरे बेटे! सदैव पुरुषोचित आचरण करना।"

आत्म-त्याग की यही भावना थी जिसने नरेन को अपने समवयस्कों का आदर्श बना दिया। यह प्रभाव इतना गहरा था कि इनमें से अधिकांश ने अपने कॉलेज के दिनों में गम्भीर और महत्वपूर्ण विषयों में भी उन्हीं का नेतृत्व स्वीकार किया।

अपने सहपाठियों के साथ नरेन के घनिष्ट सम्बन्ध थे। जब कभी स्कूल में खाली समय मिलता, या तो वे उनके साथ खेलते, कहानी सुनाते, गीत गाते, या अपनी स्वाँग भरने की अद्‌भुत कला से सबको हँसाते। अक्सर वे मित्रों को चिढ़ाते और शरारती हरकतें करते। लेकिन उन्होंने कभी किसी को भी कोई हानि नहीं पहुँचायी। इन सब शरारतों के द्वारा वे सबका ध्यान अपनी ओर खींच लेते थे और उन्हें अपना बना लेते थे। कुछ ही मिनटों में वे किसी का भी हृदय जीत लेते थे। बातों में अपनी चतुराई से वे किसी को भी मात दे सकते थे, पर उन्हें पराजित करना किसी के वश में न था। वे अद्‌भुत प्रतिभाशाली थे और बिना तैयारी के घन्टों भाषण देने की क्षमता रखते थे। नरेन कभी भी उदास नहीं रहते थे। दूसरों को कैसे हँसाया जाये यह वे भलीभाँति जानते थे, तथा अपने सभी सहपठियों को उन्होंने मोहित कर रखा था।

नरेन बहुधा अपने मित्रों को कलकत्ता के विभिन्न रोचक और दर्शनीय स्थलों पर ले जाते थे। कभी किसी बगीचे में, तो कभी ऑक्टरलोनी स्मारक या कभी संग्रहालय में। एक दिन अपनी मंडली के साथ गंगा के रास्ते कलकत्ते के एक उपनगर, मटियाबुर्ज में नवाब का चिड़ियाघर देखने गये। जब वे वापस लौट रहे थे, उनमें से एक लड़का अस्वस्थ हो गया और उसने नाव में ही वमन कर दिया। नाविक खीझ उठे और उसी समय नाव साफ कर देने की माँग करने लगे। लड़कों ने यह कार्य करने से इन्कार किया और बदले में भाड़ा दुगुना देने का सुझाव रखा। परन्तु नाविको ने यह अस्विकार कर दिया। घाट पर पहुँचने के पश्चात भी नाविक उन्हें धमकाते रहे और नाव से उतरने नहीं दिया। जब नाविक लड़कों को अपशब्द कह रहे थे, मौका देखकर नरेन किनारे पर कूद पड़े और पास ही टहल रहे दो ब्रिटिश सैनिकों से सहायता माँगी। अपनी टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में, उन्होंने अपनी मुसीबत कह सुनाई। अपने छोटे-छोटे हाथों से उनके हाथ पकड़कर उन्हें घटना स्थल पर ले आये। सैनिकों ने परिस्थिति समझकर नाविकों को आदेश दिया कि बच्चों को छोड़ दें। सैनिकों को देख नाविकों ने भयभीत होकर, एक शब्द भी कहे बिना लड़कों को मुक्त कर दिया। नरेन के प्रति आकर्षित होकर सिपाहियों ने उन्हें अपने साथ थियेटर में चलने का आमंत्रण दिया। नरेन ने वह आमंत्रण अस्वीकार कर दिया तथा सैनिकों को उनकी दयालुता और मदद के लिये धन्यवाद देते हुये उनसे बिदा ली।

एक अन्य दिलचस्प कहानी उनके बारे में कही जाती है, जब वे मात्र ग्यारह वर्ष के थे। जिस समय सम्राट एडवर्ड सप्तम, प्रिंस ऑफ वेल्स के रुप में भारत यात्रा पर आये थे, उसी समय एक ब्रिटिश युद्ध पोत 'द सिरापिस' का आगमन कलकत्ता के बन्दरगाह में हुआ। नरेन के मित्रों ने उनसे आग्रह किया कि जहाज देखने के लिये सबके अनुमति पत्र प्राप्त करने का वे प्रयत्न करें। इसके लिये एक अंग्रेज़ अधिकारी से मिलना आवश्यक था। जब नरेन आवेदन पत्र लेकर वहाँ पहुँचे तो वहाँ के दरबान ने उन्हें बच्चा समझकर अन्दर जाने से रोक दिया। अब नरेन एक किनारे खड़े होकर सोचने लगे

कि क्या किया जाय, तभी उनका ध्यान गया कि आवेदनकर्ता यहाँ से आगे बढ़कर पहली मंजिल के एक कमरे की ओर जा रहे हैं। यह सोचकर कि यही वह कमरा होगा, जहाँ से अनुमति-पत्र दिये जाते होंगे, वहाँ पहुँचने का कोई और मार्ग ढूँढ़ने लगे। पीछे की ओर एक सीढ़ी थी, चुपके से उसी मार्ग से ऊपर पहुँचे, परदा हटाते ही वे कमरे के अन्दर थे। वे आवेदनकर्ता की कतार में लग गये और जब उनकी बारी आई तो बिना किसी पूछ-ताछ के आवेदन पत्र पर हस्ताक्षर हो गये। लौटते समय जब वे दरबान के सामने से गुजरे, तब उसने चकित होकर पूछा, "तुम अन्दर गये कैसे?" उत्तर मिला, "ओह! मैं तो जादूगर हूँ।"

एक और घटना थी जिससे स्पष्ट होता था कि इस बालक में एक महान पुरुष बनने के लक्षण निहित थे। उस समय चौदह वर्षिय नरेन ने एक नाटक के प्रदर्शन को भंग होने से बचाया। नाटक सुचारु रुप से चल रहा था। प्रदर्शन के बीच में ही अचानक एक करिन्दा एक मुख्य अभिनेता को गिरफ्तार करने का वारन्ट लेकर मंच पर आ गया। उसने अभिनेता की ओर बढ़ते हुये कहा, "कानून के अन्तर्गत मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूँ।" उसी क्षण एक आवाज़ सुनाई दी - "मंच से नीचे उतरो - नाटक समाप्त होने तक रुको। इस प्रकार दर्शकों का रंगभंग करने में तुम्हारा क्या आशय है?" इस तीखी आवाज़ में स्पष्ट आदेश था और यह आवाज़ नरेन की थी। उनके समर्थन में तुरन्त ही अनेक आवज़े उभरीं, "मंच से उतरो - मंच से उतरो।" करिन्दा अचम्भित होकर पीछे हट गया। नरेन के पास खड़े लोगों ने उनकी पीठ थपथपाते हुये कहा, "शाबाश! आज तुम्हारे बिना अपने रुपयों का मूल्य हम वसूल नहीं कर पातें।"

नरेन का साहसी, उदार, संवेदनशील स्वभाव इन घटनाओं में चमक उठता है। साथ ही उनकी सूझ-बूझ, अदम्यशक्ति और विनोदप्रियता एवं साहसिक कार्यों के प्रति लगाव आदि कुछ ऐसे गुण थे जिन गुणोंने उन्हें अपने साथियों का नेता बना दिया था।

• • •

हिन्दी सिनियर (कक्षा ८ से १०)

विशेष सूचना :

१. प्रत्येक विद्यार्थी को ३ मिनट दिये जायेंगे।

२. कृपया निर्धारित विषय तक सीमित रहिए।

३. निर्णायकों का मूल्यांकन

(अ) विषय : ३० अंक (ब) स्पष्टता : १० अंक (क) प्रभाव : १० अंक

१. वात्सल्यमूर्ति माँ

जन्म २२-१२-१८५३, जन्मस्थान - जयरामबाटी, जिला - बाँकुड़ा, पश्चिम बंगाल, जीवनकाल - १८५३-१९२०.

श्रीसारदामाँ - निर्धन परिवार में जन्मीं, सादे ग्रामीण वातावरण में रहीं और ६ वर्ष की छोटी उम्र में श्रीरामकृष्ण से विवाहित, सारे विश्व में, पावन माँ के रुप में पूजी जातीं हैं' वे श्रीरामकृष्ण से भी देवीमाँ के रुप में आराधित थीं और उनकी (श्रीरामकृष्ण की) महासमाधि के बाद वे हजारों संन्यासी एवं गृहस्थ, दोनों ही आध्यात्मिक साधकों की विश्वसनीय पथप्रदर्शक बनीं।

श्रीमाँ कहतीं - जिसका हृदय पवित्र होता है, वह सर्वत्र पवित्रता ही देखता है।

उनके जीवन में मानवता एवं दिव्यता का अद्‌भुत मिश्रण मिलता था। विश्व की नज़रों में उनकी आध्यात्मिक शक्ति के अतिरिक्त उनके जीवन के केवल मानवीय भाव ही उन्हें उदाहरणीय चरित्र बनाने में पर्याप्त थे। भारतीय नारित्व की परिपूर्णता में अवश्य ही उनका सर्वोत्तम स्थान था। उनके कार्य सदा उच्चतम गौरव और महानतम उदात्तता दर्शाते थे। गलती से भी उनका संबन्ध किसी प्रकार के छोटेपन या संकीर्णता से नहीं हो सकता था। अपने साधारण व्यवहार में भी वे दृष्टिकोण की उदारता और शिष्टता में सबसे अग्रिम थीं। औरों के सामने उनका जीवन सदा अनुसरण के लिये आदर्श था और उनके कार्यों और व्यवहार में किसी प्रकार की लेशमात्र कमी खोज पाना कठिन था।

किन्तु उनके चरित्र के सभी गुणों को आच्छादित करनेवाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण था उनका मातृत्वपूर्ण प्यार। कुछ भी हो, प्रत्येक व्यक्ति उनमें एक माँ को पाते थे। उनका किसी के प्रति प्यार उसकी स्वयं की जननी से भी प्रबलतर था। बहुत से युवक जिनकी मातायें बचपन में ही चल बसीं थीं और माताओं के प्यार से वंचित हो गये थे और नहीं जानते थे कि माँ का प्यार क्या होता है, वे लोग जब सारदामाँ के सन्निकट आये तो उनकी कमी की अधिक मात्रा में भरपाई हुई। बहुतों को, उनमें एक माँ को पाने के बाद, इस जीवन में और आनेवाले जीवन में, किसी अन्य वस्तु के प्रति अतृप्त चाह नहीं रही। उनका प्यार ही उन्हें इहलोक में सुरक्षा और तत्पश्चात मोक्ष देने में सक्षम था। उन्हें उनकी आध्यात्मिक शक्तियों को जानने की जरा भी परवाह न थी। इस ममता के महान शिखर के चरण छूकर वे अपनेआप को पर्याप्तरुप से धन्य मानते और उन्हें उस आध्यात्मिक हिमालय की उच्चतम चोटी के दर्शन करने की बिल्कुल इच्छा नहीं होती। उनकी भावभंगिमा में ही ऐसा कुछ था कि श्रद्धायुक्त भय से भी निरस्त्र कर देता था। जब वे दीक्षा दे रहीं होतीं तो शायद शिष्य श्रद्धायुक्त भय एवं आदर की अनुभूति से प्रबल रुप से प्रभावित रहते पर ज्यों ही दीक्षासंस्कार पूरा होता और जब वे उन्हें स्वयं की माँ की भाँति मिठाईयाँ खिलातीं, वे उनसे तत्काल घुल जाते, जैसे वे अपने घर में हों। कईं अवसरों पर उन्होंने अपने कपड़े या कंबल नवयुवक शिष्यों को उपयोग के लिए दिये। संभवत: ऐसे शिष्यगण माँ की व्यवहार की गई वस्तुओं को काम में लाना देवत्व-अपहारी समझते होंगे। परन्तु उनकी स्वभावत: मातृत्वपूर्ण भंगिमा ऐसी अनुभूति को तत्काल दूर कर देती। क्या कभी बेटा अपनी माँ की दी हुई कोई वस्तु व्यवहार करने में हिचकता है?

जयरामबाटी में वे अनुयायियों के लिए भोजन पकातीं, उनकी जूठी थालियाँ धोतीं और जहाँ वे भोजन करते उस स्थान को भी साफ करतीं। कभी भक्तगण दूर से आते और दो-तीन दिन उनके पास ठहरने के पश्चात उनके प्रति इतना लगाव अनुभव करते कि उस स्थान को छोड़ते समय आँसु बहाते थे। कईं बार जब वे विदा होते तब माँ उन्हें अपनी ममता से भरी अश्रुविगलित

आँखों से निहारतीं और जब तक वे ओझल न हो जाते, उन्हें देखतीं रहतीं। एक बार एक युवक साधु किसी काम से बाहर गये। उनको लौटते हुए प्राय: शाम हो गयी पर माँ ने उनके आने के पहले भोजन ग्रहण नहीं किया। एक माँ कैसे अपना भोजन ले सकती है जबकि बेटे ने न लिया हो? जब शिष्य ने यह देखा तो भावुकता से भर गया। किसी की अपनी माँ भी सदा इतना विचार नहीं करती। वे तो सब की माँ थीं। स्त्री के गर्भ से उत्पन्न प्रत्येक आत्मा उनमें एक माँ को पाती। उनका प्रेम भौगोलिक सीमाओं और जाति-पाति के भेद से परे था। पूर्व और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, कहीं के भी लोग हों, उनकी कृपा, आशिर्वाद पाने आते थे। भले ही वे उनकी भाषा नहीं बोल सकतीं, परन्तु प्यार की अनकही भाषा ही उन्हें पूर्ण परितृप्ति देने वाली थी। वे अपने को धन्य समझते।

जब भगिनी निवेदिता भारत आयीं, स्वामी विवेकानंद कुछ उत्कंठित थे कि उनके लिये हिन्दू समाज में कैसे एक स्थान बनाया जाये। पर पूज्य पावन माँ ने उन्हें अपने कमरे में ठहराया। यह माँ की ओर से अद्‌भुत साहसी और अदम्य उदारतापूर्ण खुलापन था क्योंकि यदि उनके रिश्तेदारों में यह खबर पहुँचती तो शायद उनको सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ सकता था। क्या यह उल्लेखनीय नहीं है? उनकी स्वयं की ओर से भी देखें तो यद्यपि वे रूढ़िवादी ब्राह्मण परिवार से थीं, उन्हें आधुनिक शिक्षा नहीं मिली थी, फिर भी उन्होंने एक युरोपियन महिला को अपने साथ ठहराने की व्यवस्था की। और वह भी, पिछली शताब्दी के ऐसे काल में, जब हिन्दू समाज सामाजिक नियमों के प्रति बिना समझौते के कठोर था।

भले ही वे पुरानी दुनिया की थीं, पर विचार से अतिआधुनिक थीं। उनके इन लक्षणों को देखकर ही भगिनी निवेदिता ने उचित निरुपण किया कि, "क्या वे पुरातन की अंतिम कड़ी हैं, या नवीनता की शुरुआत!" कई शिष्य गैर-बंगाली हों या भारतीय न हों, पावन माँ के पास जाते, पर उनकी स्वाभाविक सुसंस्कृत उदात्तता इतनी ठोस थी कि सभी उनके सानिध्य में बहुत सहजता अनुभव करते थे। एक बार भगिनी निवेदिता के घर ईस्टर संगीत

सुनते हुए वे इतनी भावविभोर हो गईं थीं कि किसी को भी आश्चर्य होगा कि बगैर किसी पश्चिमी भाषा को जाने, वे ईसा के पुनर्जन्म संम्बन्धी स्तोत्र की भावसुरभि की सूक्ष्मता में कैसे प्रवेश कर सकीं।

उनकी मानसिक पैठ इतनी गहरी थी, उनका सामान्य ज्ञान इतना प्रखर था कि उनके क्षेत्र के बाहर के समझे जानेवाले विषयों पर भी वे ठोस राय दे सकतीं थीं। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान एक शिष्य ने माँ को बताया कि कैसे राष्ट्रपति विल्सन सारे विश्व में भविष्य में युद्ध का खतरा हटाने और शांति बहाल करने का प्रयत्न कर रहे थे। माँ का शांत विचार था - वे लोग होठों से बोलते हैं, यह उनके हृदय के उद्‌गार नहीं। एक बार उनके एक शिष्य, ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत में जो जीवन सहयोगी सुविधायें उपलब्ध करायी थी उन्हें गिना रहे थे। माँ का जवाब था, "पर क्या यह सत्य नहीं कि जनता की गरीबी दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है?"

कभी-कभी निम्न जाति के कुछ लोग जयरामबाटी में उनके पास आते थे, पर माँ का समभाव उनके प्रति सदा अडिग रहता। केवल वे ध्यान रखतीं कि अन्य लोगों की उपस्थिति में वे सहज जातिगत सीमाओं का पालन करें, अन्यथा रुढ़िवादिता वाले गाँव में हलचल मच सकती थी।

एक शाम एक श्रमिक महिला किसी भक्त द्वारा भेजी गई सब्ज़ियाँ लेकर आई और उसे रात को उनके घर ही ठहरना पड़ा। उस महिला को रात को बुखार और उल्टी हो गयी। दूसरे दिन प्रात:काल, सबके उठने के पहिले ही पूजनीय माँ ने गन्दे बिस्तर को स्वच्छ किया जिससे गरीब बेचारी स्त्री को कोई डाँट न पड़े।

एक मुस्लिम श्रमिक एक दिन उनके घर में भोजन कर रहा था। माँ की एक भतीजी नलिनी उसे परोस रही थी। जातिगत भेदभाववश नलिनी ने कुछ दूरी रखते हुए उसकी थाली में फेंकते हुए भोजन डाला। इस पर पूज्य पावन माँ ने अपनी भतीजी को डाँटा और उसे भोजन परोसा। जब उसने भोजन समाप्त किया, माँ ने भोजन किया गया स्थान भी साफ किया। नलिनी सहम

गयी, उसने चकित होकर कहा, "यह आप क्या कर रहीं हैं? क्या इस तरह आप जाति नहीं खो देंगी!"

ऐसी घटनायें असामान्य नहीं हैं कि जब बहुत निम्न जाति के लोग उनसे दीक्षा लेते थे और बाद में उनके अपने कमरे में बैठकर भोजन पाते थे और माँ स्वयं उनकी जूठी थालियाँ माँज देतीं थीं। सामाजिक रीतियों के अनुसार ब्राह्मण द्वारा इस प्रकार की सेवा लेना उनके लिए पापजनक था। साधारण परिस्थितियों में वे स्वयं ऐसा होता नहीं देख सकते थे। पर वे माँ को स्वयं अपनी जननी के रुप में अनुभव करते थे और यदि वे इस प्रकार की सेवायें देतीं तो उन्हें सहज स्वाभाविक लगतीं।

सामान्यत: वे लोगों की गरीबी और कष्टों को बड़ी गहराई से अनुभव करतीं थीं। वे रामकृष्ण मिशन की समाजसेवा सम्बंधी गतिविधियों में गहरी रुचि लेतीं थीं। यदि कोई साधु उनके पास शिकायत लेकर आता कि उसके ध्यान साधना के जीवन में इन सेवा कार्यों से व्यवधान आता है, तो वे उस पर कोई ध्यान नहीं देतीं। वे कहतीं, "ये सब भी श्रीठाकुर के काम हैं।" जब जयरामबाटी में होतीं थीं, वे सभी पड़ोसियों के कार्यों में सहानुभूतिपूर्ण रुचि लेतीं और उनके लिए महान शक्तिस्त्रोत थीं। माँ की करुणा एवं सही समय पर मिली सहायता से उनकी पीड़ाओं का बोझ हल्का हो जाता।

पथच्युत लोग भी उनके प्यार व आशिर्वाद से वंचित न थे। यद्यपि कभी-कभी इस पर अन्य अनुयायी भक्त विनम्र विरोध करते। एक बार उन्होंने स्पष्ट रुप से कहा, "यदि मेरा बेटा धूल में लोटे, तो भी वह मेरा ही बेटा है।" एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा कि, "मैं जितनी सज्जनों की माँ हूँ उतनी ही दुर्जनों की।" एक बार एक महिला, जो स्वयं को नैतिक दुराचार के दोष से ग्रसित अनुभव करती थी, कलकत्ते में उनसे मिलने आयी, पर उसे कमरे में प्रवेश करने का साहस नहीं हुआ। माँ को सारी स्थिति समझ में आ गयी। वे स्वयं उसे अपने कमरे में लायी, उसे गले लगाया, स्नेह दिया और उसे दीक्षा भी दी। माँ ने उसे साहस और संतोष दिलाते हुए कहा, "क्या हुआ

जो तुमने गलत काम किया? जब तुम अपनी गलती का पश्चाताप कर रही हो, तो दोष धुल गया।" उसके बाद से उस महिला का जीवन परिवर्तित हो गया।

यद्यपि अनेक दोषी व्यक्तियों ने उनसे माँ का प्यार पाया, पर उनका प्यार उन्हें गलतियाँ करने की स्वतंत्रता नहीं देता था। चरित्र में थोड़ा भी दोष उनकी नज़र में आने से नहीं बचता। संभव है, वे इस बात को सदा व्यक्त न करें पर यदि यह आवश्यक हो तो कर्तव्य में चूक करने वाले को अवश्य ही उनसे डाँट मिलती। वे संन्यासी, जिनको अपने गेरूए वस्त्रों का गर्व होता, या गृहस्थ, जो कम उम्र संन्यासी के प्रति नम्रता प्रदर्शन में कमी करते, दोनों ही वर्गों को समान रुप से इस प्रकार के व्यवहार से सामने आनेवाले खतरों के प्रति सचेत करतीं। यदि आवश्यकता पड़ती तो वे बहुत कठोर भी हो सकतीं थीं। यदि कोई सोचे कि उनके प्यार की शरण में वह जो चाहे कर सकता है, तो यह उसकी भूल होती। अवसर आने पर ऐसे व्यक्ति को वे तत्काल स्थान छोड़कर चले जाने का आदेश भी दें देतीं। यद्यपि ऐसे अवसरों की संभावना बहुत ही कम होती थी।

एक शिष्य भले ही अनुभव करे कि उनका प्यार उसके वर्तमान और भविष्य जीवन की त्रुटियों को दूर करने के लिए पूर्ण रुप से निश्चिंतता की जमानत है, पर माँ को उनके लिए कितना सोचना विचारना पड़ता जिनकी उन्होंने जिम्मेवारी ली थी! यहाँ तक कि उनकी रुग्णावस्था में भी वे बहुत समय प्रार्थना और ध्यान में बितातीं। जब पूछा जाता, ऐसी स्थिति में, इतने आध्यात्मिक आचारण की क्या आवश्यकता थी, उनका उत्तर होता, "मैं उनकी ओर से कर रही हूँ जिन्होंने मेरी शरण ली है।"

जब एक बार किसी शिष्या ने उनसे पूछा कि वह उन्हें किस दृष्टि से देखे, तब उन्होंने कहा, "इतना ही बहुत काफी है यदि तुम मुझे अपने माँ के रुप में मानो।" कईंबार उनका मातृत्व भरा हृदय यह सहन नहीं कर पाता कि उनके शिष्य कठिन तपस्या के दौरान बहुत शारीरिक कष्ट पायें। वे तरुण साधकों को इन तपस्या संम्बन्धी अति के बारे में सदैव सावधान कर देतीं थीं।

पर साथ ही वे जानतीं थीं कि किस प्रकार, एक आलसी उत्साहीन व्यक्ति को, जो कल्पना करता है कि आरामदेह जीवन के साथ आध्यात्मिक प्रगति मजे में हो सकती है, सक्रियता के प्रति जागरुक करें।

पहले तो सारदामणि की माँ दु:खित थीं कि उनकी बेटी का विवाह एक ऐसे व्यक्ति से हो गया, जो मानो आधा पागल था, जो सांसारिक गृहस्थ जीवन नहीं बिताता था, अत: उनकी सारदा अपने बच्चों सें माँ कहलवाने का सुख नहीं जान पायेगी। इस पर श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा, "प्यारी सासूमाँ, आपको दु:खी होने की आवश्यकता नहीं, आपकी बेटी को इतने बच्चे मिलेंगे कि बाद में माँ कहलाते कहलाते वे थक जायेंगी।" उनकी सिद्ध वाणी कितनी सत्य हुई! हम नहीं जानते, पावन माँ अपने बच्चों से माँ कहलाते कभी थकीं भी थीं। पर यह सत्य है कि जगत में कोई ऐसी माँ नहीं हुई जिन्हें इतने सारे बच्चे माँ कहकर संबोधित करते और उनका स्नेह भी माँ के प्रति कैसा महान! एक भक्त ने उन्हें एक दिन कहा, "आपको मेरे जैसे कई बेटे मिले हैं, पर मुझे आपके जैसी कोई माँ नहीं मिली!"

स्वामी विवेकानन्द ने पावन माँ के जीवन के उद्देश्यों को इस प्रकार दर्शाया - शक्ति के बिना, संसार के लिये नवजीवन का विकास सम्भव नहीं। ऐसा क्यों है कि हमारा देश समस्त देशों में सबसे कमज़ोर और सबसे पिछड़ा हुआ है? क्योंकि यहाँ शक्ति का ही अनादर किया गया है। इसी अद्‌भुत शक्ति का भारत में पुनरुत्थान हेतु, पावन माँ सारदा का जन्म हुआ, और वे इस संसार में फिर से आनेवाली गार्गी और मैत्रेयी की केन्द्रबिन्दु बनेंगी।

हमारे पुरान और इतिहास में महान नारियों की श्रेष्ठता हमें आदर्श गुरु या वरिष्ठ माता या पत्नि रुप में मिलती हैं। परन्तु इन सभी का समन्वय रुप, केवल श्रीसारदादेवी, पावन माँ के स्वरुप में ही केन्द्रित है।

• • •

हिन्दी सिनियर (कक्षा ८ से १०)

विशेष सूचना :

१. प्रत्येक विद्यार्थी को ३ मिनट दिये जायेंगे।

२. कृपया निर्धारित विषय तक सीमित रहिए।

३. निर्णायकों का मूल्यांकन

(अ) विषय : ३० अंक (ब) स्पष्टता : १० अंक (क) प्रभाव : १० अंक

२. भारत का पुनरुत्थान

लाखों स्त्री-पुरुष पवित्रता के अग्निमन्त्र से दीक्षित होकर, भगवान के प्रति अटल विश्वास से शक्तिमान बनकर और गरीबों, पतितों तथा पददलितों के प्रति सहानुभूति से सिंह के समान साहसी बनकर इस सम्पूर्ण भारत देश के एक छोर से दूसरे छोर तक सर्वत्र उद्धार के सन्देश, सेवा के सन्देश, सामाजिक उत्थान के संदेश और समानता के सन्देश का प्रचार करते हुए विचरण करेंगे।

हताश न होना। याद रखना कि भगवान ने गीता में कहा है, 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' - तुम्हारा अधिकार कर्म में है, फल में नहीं। कमर कस लो, वत्स, प्रभु ने मुझे इसी काम के लिए बुलाया है। जीवन भर मैं अनेक यन्त्रणाएँ और कष्ट उठाता आया हूँ। मैंने प्राणप्रिय आत्मियों को एक प्रकार से भुखमरी का शिकार होते हुए देखा है। लोगों ने मेरा मज़ाक उड़ाया है और अविश्वास किया है, और ये सब वे ही लोग हैं, जिनसे सहानुभूति करने पर मुझे विपत्तियाँ झेलनी पडीं। वत्स, यह संसार दु:ख का आगार तो है, पर यही महापुरुषों के लिए शिक्षालयस्वरुप है। इस दु:ख से ही सहानुभूति, धैर्य और सर्वोपरि उस अदम्य दृढ़ इच्छा-शक्ति का विकास होता है, जिसके बल से मनुष्य सारे जगत् के चूर चूर हो जाने पर भी रत्तीभर नहीं हिलता। मुझे उन स्वार्थी लोगों पर तरस आता है। वे दोषी नहीं हैं। वे बालक हैं, निरे बच्चे हैं - भले ही समाज में वे बड़े गणमान्य समझे जायें। उनकी आँखें कुछ गज के अपने छोटे क्षितिज के परे कुछ नहीं देखतीं और यह क्षितिज है - उनका नित्यप्रति का कार्य, खानपान, अर्थोपार्जन और वंशवृद्धि।

ये सब कार्य घड़ी-काँटे पर सधे होते हैं। इसके सिवा उन्हें और कुछ नहीं सूझता। अहा, कैसे सुखी हैं ये बेचारे! उनकी नींद किसी तरह टूटती ही नहीं। सदियों के अत्याचार के फलस्वरुप जो पीड़ा, दुःख, हीनता, दारिद्र्य की आह भारत-गगन में गूँज रही है, उनसे उनके सुखकर जीवन को कोई आघात नहीं लगता। युगों के जिस मानसिक, नैतिक और शारीरिक अत्याचार ने ईश्वर के प्रतिमारुपी मनुष्य को भारवाही पशु, भगवती की प्रतिमारुपिणी रमणी को सन्तान पैदा करनेवाली दासी, और जीवन को अभिशाप बना दिया है, उसकी वे कल्पना भी नहीं कर पाते। परन्तु ऐसे भी अनेक मनुष्य हैं, जो देखते हैं, अनुभव करते हैं, और दिलों में खून के आँसु बहाते हैं - जो सोचते हैं कि इनका इलाज है, और किसी भी कीमत पर यहाँ तक कि अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर भी इन्हें हटाने को तैयार हैं। और ये ही हैं वे लोग जिनसे स्वर्ग-राज्य बना है।

तथोक्त धनिकों पर भरोसा न करो, वे जीवित की अपेक्षा मृत ही अधिक हैं। आशा तुम लोगों से है - जो विनीत, निरभिमानी और विश्वासपरायण हैं। ईश्वर के प्रति आस्था रखो। किसी चालबाजी की आवश्यकता नहीं; उससे कुछ नहीं होता। दुःखियों का दर्द समझो और ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करो - वह अवश्य मिलेगी। मैं बारह वर्ष तक हृदय पर यह बोझ लादे और सर में यह विचार लिए बहुत से तथाकथित धनिकों और अमीरों के दर दर घूमा। हृदय का रक्त बहाते हुए मैं आधी पृथ्वी का चक्कर लगाकर इस अजनबी देश में सहायता माँगने आया। परन्तु भगवान अनन्त शक्तिमान है - मैं जानता हूँ, वह मेरी सहायता करेगा। मैं इस पाश्चात्य देश में भूख या जाड़े से भले ही मर जाऊँ, परन्तु, युवकों! मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ीतों के लिए इस सहानुभूति और प्राणपण प्रयत्न को विरासत के तौर पर तुम्हें अर्पण करता हूँ। जाओ, इसी क्षण जाओ उस पार्थसारथी (भगवान कृष्ण) के मन्दिर में, जो गोकुल के दीन-हीन ग्वालों के सखा थे, जो गुहक चाण्डाल को भी गले लगाने में नहीं हिचके, जिन्होंने अपने बुद्धावतार-काल में अमीरों का निमन्त्रण अस्वीकार कर एक वारांगना के भोजन का निमन्त्रण स्वीकार किया और उसे उबारा; जाओ

उनके पास, जाकर साष्टांग प्रणाम करो और उनके सम्मुख एक महा बलि दो, अपने समस्त जीवन की बलि दो - उन दीनहीनों और उत्पीड़ितों के लिए, जिनके लिए भगवान युग युग में अवतार लिया करते हैं, और जिन्हें वे सबसे अधिक प्यार करते हैं। और तब प्रतिज्ञा करो कि अपना सारा जीवन इन तीस करोड़ लोगों के उद्धार-कार्य में लगा दोगे, जो दिनोंदिन अवनति के गर्त में गिरते जा रहे हैं।

यह एक दिन का काम नहीं, और रास्ता भी अत्यन्त भयंकर कंटकों से आकीर्ण है। परन्तु पार्थसारथी हमारे भी सारथी होने के लिए तैयार हैं - हम यह जानते हैं। उनका नाम लेकर और उन पर अनन्त विश्वास रखकर भारत के युगों से संचित पर्वतकाय अनन्त दु:ख राशि में आग लगा दो - वह जलकर राख हो ही जायगी। तो आओ भाईयों, साहसपूर्वक इसका सामना करो। कार्य गुरुतर है और हम लोग साधनहीन हैं। तो भी हम अमृतपुत्र और ईश्वर की सन्तान हैं। प्रभु की जय हो, हम अवश्य सफल होंगे। इस संग्राम में सैकड़ों बलि चढ़ेंगे पर सैकड़ों पुन: उनकी जगह खड़े हो जायेंगे। सम्भव है कि मैं यहाँ विफल होकर मर जाऊँ, पर कोई और यह काम जारी रखेगा। तुम लोगों ने रोग जान लिया और दवा भी, अब बस, विश्वास रखो। तथाकथित धनी या अमीर लोगों का रुख मत जोहो - हृदयहीन, कोरे बुद्धीवादी लेखकों और समाचारपत्रों में प्रकाशित उनके निस्तेज लेखों की भी परवाह मत करो। विश्वास, सहानुभूति - दृढ विश्वास और ज्वलन्त सहानुभूति चाहिए। जीवन तुच्छ है, मरण भी तुच्छ है, भूख तुच्छ है और जाड़ा भी तुच्छ है। जय हो प्रभु की! आगे कूच करो - प्रभु ही हमारे सेनानायक हैं। पीछे मत देखो।

पाश्चात्य देश में जन्म लेनेवाला प्रत्येक व्यक्ति अपने को एक मनुष्य समझता है। भारत में जन्म लेनेवाला प्रत्येक व्यक्ति समझता है कि वह समाज का एक दास है। उन्नति की एकमात्र सहायक स्वाधीनता है। उसके अभाव में अवनति अवश्यम्भावी है। देखो, आधुनिक प्रतिस्पर्धा के युग में जाति-भेद अपने आप कैसे नष्ट होता जा रहा है। उसका नाश करने के लिए किसी धर्म की आवश्यकता नहीं। उत्तर भारत में दुकानदारी, जूतों का धन्धा और

शराब बनाने का काम करनेवाले ब्राह्मण देखने में आते हैं। इसका कारण? प्रतिद्वन्दिता। किसी भी मनुष्य पर इच्छानुसार कोई भी व्यवसाय करने की रोक-टोक नहीं। फलत: जबरदस्त प्रतियोगिता उत्पन्न हो गयी है। इस प्रकार हजारों लोग नीचे पड़े रहकर जड़ता प्राप्त होने की जगह उन ऊँचे से ऊँचे पदों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं और प्राप्त भी कर रहे हैं, जिनके लिए उन्होंने जन्म ग्रहण किया है।

प्रतिदिन मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रभु मेरे साथ हैं और मैं उनके आदेशानुसार चल रहा हूँ। उनकी इच्छा पूर्ण हो। ...हम लोग संसार के लिए बड़े महत्वपूर्ण कार्य करेंगे और वे सब नि:स्वार्थ भाव से किए जाएँगे, नाम अथवा यश के लिए नहीं।

प्रश्न करने का हमें कोई अधिकार नहीं; हमें तो अपना कार्य करते करते प्राण छोड़ने हैं Ours not to reason why, ours but to do and die; साहस रखो और इस बात का विश्वास रखो कि प्रभु ने बड़े-बड़े कार्य करने के लिए हम लोगों को चुना है और हम उन्हें करके ही रहेंगे। उसके लिए तैयार रहो, अर्थात् पवित्र, विशुद्ध एवं नि:स्वार्थ प्रेम-सम्पन्न बनो। दरिद्रों, दु:खियों और दलितों से प्रेम करो, प्रभु तुम्हारा कल्याण करेंगे।

अपने बन्धुओं से प्राय: मिलते रहो और उनसे आग्रह करो कि वे भारत के साधारण लोगों के प्रति सहानुभूति रखें। उन्हें बतलाओ कि वे किस प्रकार गरीबों की गर्दनों पर सवार हैं और यह कि यदि वे प्रजा की उन्नति के लिए प्रयत्न न करें, तो वे मनुष्य कहलाने योग्य नहीं। निर्भय हो जाओ। प्रभु तुम्हारे साथ हैं, और वे भारत के करोड़ों भूखों और अशिक्षितों का उद्धार करेंगे।

शिक्षित युवकों को प्रभावित करो, उन्हें एकत्रित करो और संघबद्ध करो। बड़े-बड़े काम केवल बड़े बड़े स्वार्थत्यागों से ही हो सकते हैं। स्वार्थपरता की आवश्यकता नहीं, नाम की भी नहीं, यश की भी नहीं - तुम्हारे नहीं, मेरे नहीं। मेरे प्रभु के भी नहीं। काम करो, भावनाओं को, योजनाओं को

कार्यान्वित करो, मेरे बालकों, मेरे वीरों, सर्वोत्तम, साधुस्वभाव मेरे प्रियजनों, पहिये पर जा लगो, उस पर अपने कन्धे लगा दो। नाम, यश अथवा अन्य तुच्छ विषयों के लिए पीछे मत देखो। स्वार्थ को उखाड़ फेंको और काम करो। याद रखना --- **तृणैर्गुणेत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः** --- बहुत से तिनकों को एकत्र करने से जो रस्सी बनती है, उससे मतवाला हाथी भी बँध सकता है। तुम सब पर प्रभु का आशिर्वाद बरसे। उनकी शक्ति तुम सबके भीतर आये। मुझे विश्वास है कि उनकी शक्ति तुममें वर्तमान ही है। वेद कहते हैं, **उत्तिष्ठतः जाग्रतः प्राप्य वरान्निबोधतः** --- उठो, जागो, लक्ष्यस्थल पर पहुँच जाने के पहले रुको नहीं। उठो, उठो, लम्बी रात बीत रही है, सूर्योदय का प्रकाश दिखायी दे रहा है। तरंग ऊँची उठ चुकी है, उस प्रचण्ड जलोच्छवास का कोई भी प्रतिरोध न कर सकेगा। लिखना आदि सब इस संसार में निरर्थक है। उत्साह, मेरे बच्चों, उत्साह! प्रेम, मेरे बच्चों, प्रेम। विश्वास और श्रद्धा और, डरो नहीं। भय ही सबसे बड़ा पाप है।

सबको मेरा आशिर्वाद। सभी व्यक्तियों को जिन्होंने हमारे कार्य में सहायता की थी, कहना कि मैं अपनी अनन्त कृतज्ञता और अनन्त प्रेम भेज रहा हूँ। परन्तु मेरी उनसे यही प्रार्थना है कि वे काम में शिथिलता न आने दें। चारों ओर विचारों को फैलाते रहो। घमंडी न होना। किसी भी हठधर्मितावाली बात पर बल न हो। किसी का विरुद्धाचरण भी मत करना। हमारा काम केवल यही है कि हम अलग अलग रासायनिक पदार्थों को एक साथ रख दें। प्रभु ही जानते हैं कि किस तरह और कब वे मिलकर स्फटिक बन जायेंगे। सर्वोपरि, मेरी या अपनी सफलता से फूलकर कुप्पा न हो जाना, अभी हमें बड़े-बड़े काम करने बाकी है। भविष्य में आनेवाली सिद्धि की तुलना में यह तुच्छ साफल्य क्या है?

विश्वास रखो, विश्वास रखो - प्रभु की आज्ञा है कि भारत की उन्नति अवश्य ही होगी और साधारण तथा गरीब लोगों को सुखी करना होगा। अपने आप को धन्य मानों कि प्रभु के हाथों में तुम निर्वाचित यंत्र हो। आध्यात्मिकता की बाढ़ आ गयी है। नि:सीम, सर्वग्रासी उस प्लावन को मैं भूपृष्ठ पर

आवर्तित होता देख रहा हूँ। तुम सभी आगे बढ़ो, सबकी शुभेच्छाएँ उसकी शक्ति में सम्मिलित हों, सभी हाथ उसके मार्ग की बाधाएँ हटा दें। प्रभु की जय हो।

तुम लोग कुछ धन इकट्ठा कर एक कोष बनाने का प्रयत्न करो। शहर में जहाँ गरीब से गरीब लोग रहते हैं, वहाँ एक मिट्टी का घर और एक हॉल बनाओ। कुछ मैजिक लैन्टर्न, थोड़े मानचित्र, भूगोलक और रासायनिक पदार्थ इकट्ठा करो। हर शाम को वहाँ गरीबों को - यहाँ तक कि चाण्डालों को भी - एकत्र करो। पहले उनको सदाचार के उपदेश दो, फिर मैजिक लैन्टर्न्स और दूसरी वस्तुओं के सहारे ज्योतिष, भूगोल आदि बोलचाल की भाषा में सिखाओ। तेजस्वी युवकों का दल गठन करो और अपनी उत्साहग्नि उनमें प्रज्वलित करो। और क्रमश: इसकी परिधि का विस्तार करते करते इस कार्य को बढ़ाते रहो। तुम लोगों से जितना हो सके, करो। जब नदी में कुछ पानी नहीं रहेगा, तभी पार होंगे, ऐसा सोचकर बैठे मत रहो। समाचार पत्र और मासिक पत्र आदि चलाना निस्संदेह ठीक है, पर अनन्त काल तक चिल्लाने और कलम घिसने की अपेक्षा कण मात्र भी सच्चा काम कहीं बढ़कर है। कुछ धन जमाकर ऊपर कही हुई चीजें खरीदो। एक कुटिया किराये पर लो और काम में लग जाओ। यही मुख्य काम है, पत्रिका आदि गौण है।

जिस किसी भी तरह हो सके, सर्वसाधारण में अवश्य ही हमें अपना प्रभाव डालना है। कार्य के अल्पारम्भ को देखकर डरो मत। बड़ी चीजें आगे आयेंगी। साहस रखो। अपने भाइयों का नेता बनने की कोशिश मत करो, बल्कि उनकी सेवा करते रहो। नेता बनने की इस पाश्विक प्रवृत्ति ने जीवनरुपी समुद्र में अनेक बड़े बड़े जहाज़ों को डुबा दिया है। इस विषय में सावधान रहना, अर्थात मृत्यु तक को तुच्छ समझकर नि:स्वार्थ हो जाओ और काम करते रहो। मेरे तेजस्वी बालकों, प्रभु तुम्हें सबकुछ समझने की शक्ति देंगे। मेरे बच्चों, काम में लग जाओ। प्रभु की जय हो। काम में लग जाओ, मेरे बच्चों, उत्साहाग्नि तुममें स्वयं प्रज्वलित हो उठेगी।

संगठन की शक्ति का हमारी प्रकृति में पूर्णतया अभाव है, उसका विकास करना होगा। इसका सबसे बड़ा रहस्य है - ईर्षा का अभाव होना। अपने भाइयों के विचारों को मान लेने के लिये सदैव प्रस्तुत रहो और उनसे हमेशा मेल बनाये रखने की कोशिश करो। यही सारा रहस्य है। बहादुरी से लड़ते रहो। जीवन क्षणस्थायी है। इसे एक महान उद्देश्य के लिए समर्पित कर दो!

• • •

हिन्दी सिनियर (कक्षा ८ से १०)

विशेष सूचना :

१. प्रत्येक विद्यार्थी को ३ मिनट दिये जायेंगे।

२. कृपया निर्धारित विषय तक सीमित रहिए।

३. निर्णायकों का मूल्यांकन

(अ) विषय : ३० अंक (ब) स्पष्टता : १० अंक (क) प्रभाव : १० अंक

३. चरित्र-गठन के लिए शिक्षा

मनुष्य का चरित्र उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों की समष्टि है, उसके मन के समस्त झुकावों का योग है। सुख और दु:ख ज्यों-ज्यों उसकी आत्मा पर से होकर गुज़रते हैं, वे उस पर अपनी-अपनी छाप या संस्कार छोड़ जाते हैं, ओर इन सब विभिन्न छापों की समष्टि ही मनुष्य का चरित्र कहलाता है। हम वहीं हैं, जो हमारे विचारों ने हमें बनाया है। प्रत्येक विचार हमारे शरीर पर, लोहे के टुकड़े पर हथौड़े की हलकी चोट के समान है और उसके द्वारा हम जो बनना चाहते हैं, बनते जाते हैं। वाणी तो गौण है। विचार सजीव होते हैं, उनकी दौड़ बहुत दूर तक हुआ करती है। अत: तुम अपने विचारों के सम्बन्ध में सावधान रहो।

भलाई और बुराई दोनों का चरित्र-गठन में समान भाग रहता है, और कभी-कभी तो सुख की अपेक्षा दु:ख ही बड़ा शिक्षक होता है। यदि हम संसार के महापुरुषों के चरित्र का अध्ययन करें, तो मैं कह सकता हूँ कि अधिकांश दशाओं में हम यही देखेंगे कि सुख की अपेक्षा दु:ख ने तथा सम्पत्ति की अपेक्षा दारिद्र्य ने ही उन्हें अधिक शिक्षा दी है एवं स्तुति की अपेक्षा आघातों ने ही उनकी अन्त:स्थ ज्ञानाग्नि को अधिक प्रस्फुटित किया है। विलास और ऐश्वर्य की गोद में पलते हुए, गुलाबों की शय्या पर सोते हुए और कभी भी आँसु बहाये बिना कौन महान हुआ है? जब हृदय में वेदना की टीस उठती है, जब दु:ख का तुफान चारों दिशाओं में गहराता है, जब मालूम होता है कि प्रकाश अब और न दिखेगा, जब आशा और साहस नष्ट-प्राय हो जाते हैं, तभी इस भयंकर आध्यात्मिक झंझावात के बीच अन्तर्निहित ब्रह्मज्योति

प्रकाशित होती है।

मन को यदि झील की उपमा दी जाए तो उसमें उठनेवाली प्रत्येक लहर, प्रत्येक तरंग जब दब जाती है, तो वास्तव में वह बिलकुल नष्ट नहीं हो जाती, वरन् चित्त में एक प्रकार का चिन्ह छोड़ जाती है तथा ऐसी सम्भावना का निर्माण कर जाती है, जिससे वह लहर दुबारा फिर से उठ सके। हमारा प्रत्येक कार्य, हमारा प्रत्येक अंग-संचालन, हमारा प्रत्येक विचार, हमारे चित्त पर इसी प्रकार का एक संस्कार छोड़ जाता है; और यद्यपि ये संस्कार ऊपरी दृष्टि से स्पष्ट न हों, तथापि ये अज्ञात रुप से अन्दर ही अन्दर कार्य करने में विशेष प्रबल होते हैं। हम प्रति मुहूर्त जो कुछ हैं, वह इन संस्कारों के समुदाय द्वारा ही नियमित होता है। प्रत्येक मनुष्य का चरित्र इन संस्कारों की समष्टि द्वारा ही नियमित होता है। यदि शुभ संस्कारों का प्राबल्य रहे, तो मनुष्य का चरित्र अच्छा होता है; और यदि अशुभ संस्कारों का, तो बुरा। यदि कोई मनुष्य निरन्तर बुरे शब्द सुनता रहे, बुरे विचार सोचता रहे, बुरे कर्म करता रहे, तो उसका मन भी बुरे संस्कारों से पूर्ण हो जाएगा और बिना उसके जाने ही वे संस्कार उसके समस्त विचारों तथा कार्यों पर अपना प्रभाव डाल देंगे। असल में बुरे संस्कार निरन्तर अपना कार्य करते रहते हैं। ये संस्कार उसमें दुष्कर्म करने की प्रबल प्रवृत्ति उत्पन्न कर देंगे। वह तो इन संस्कारों के हाथ एक यन्त्र-सा हो जाएगा।

इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य अच्छे विचार सोचे और अच्छे कार्य करे, तो उसके इन संस्कारों का प्रभाव भी अच्छा ही होगा तथा उसकी इच्छा न होते हुए भी वे उसे सत्कार्य करने के लिए विवश करेंगे। जब मनुष्य इतने सत्कार्य एवं सत्-चिन्तन कर चुकता है कि उसकी इच्छा न होते हुए भी उसमें सत्कार्य करने की एक अनिवार्य प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, तब फिर यदि वह दुष्कर्म करना भी चाहे, तो इन सब संस्कारों का समष्टि रुप उसका मन उसे वैसा करने से तुरन्त रोक देगा। तब वह अपने सत्संस्कारों के हाथ एक कठपुतली जैसा हो जाएगा। जब ऐसी स्थिति हो जाती है तभी उस मनुष्य का चरित्र गठित या प्रतिष्ठित कहलाता है। यदि तुम सचमुच किसी मनुष्य के चरित्र को

जाँचना चाहते हो, तो उसके बड़े कार्यों पर से उसकी जाँच मत करो। मनुष्य के अत्यन्त साधारण कार्यों की जाँच करो, और असल में वे ही ऐसी बातें हैं, जिनसे तुम्हें एक महान पुरुष के वास्तविक चरित्र का पता लग सकता है। कुछ विशेष, बड़े अवसर तो छोटे से छोटे मनुष्य को भी किसी ना किसी प्रकार का बड़प्पन दे देते हैं। परन्तु वास्तव में बड़ा तो वही है, जिसका चरित्र सदैव और सब अवस्थाओं में महान रहता है।

मन में इस प्रकार के बहुतसे संस्कार पड़ने पर वे इकट्ठे होकर आदत या अभ्यास के रुप में परिणत हो जाते हैं। कहा जाता है, आदत द्वितीय स्वभाव है। पर नहीं, वह प्रथम स्वभाव भी है और मनुष्य का सारा स्वभाव है। हमारा अभी जो स्वभाव है, वह पूर्व अभ्यास का फल है। यह जान सकने से कि सब कुछ आदत का ही फल है, मन को सान्त्वना मिलती है; क्योंकि यदि हमारा वर्तमान स्वभाव केवल अभ्यासवश हुआ हो, तो हम चाहें तो किसी भी समय उस अभ्यास को नष्ट भी कर सकते हैं। बुरी आदत का एकमात्र प्रतिकार है - उसकी विपरीत आदत। सभी खराब आदतें अच्छी आदतों द्वारा वशीभूत की जा सकती हैं। सतत अच्छे कार्य करते रहो और सदा पवित्र विचार मन में सोचा करो। नीच संस्कारों को दबाने का यही एकमात्र उपाय है। ऐसा कभी न कहो कि अमुक व्यक्ति गया गुज़रा है, उसके सुधरने की आशा नहीं की जा सकती। क्यों? इसलिए कि वह व्यक्ति केवल एक विशिष्ट प्रकार के चरित्र का - कुछ अभ्यासों की समष्टि का द्योतक मात्र है, और ये अभ्यास नये एवं अच्छे अभ्यास से दूर किये जा सकते हैं। चरित्र बस पुन: पुन: अभ्यास की समष्टी मात्र है और इस प्रकार का पुन: पुन: अभ्यास ही चरित्र का पुनर्गठन कर सकता है।

सभी बुराइयों का कारण हमीं में है। किसी दैवी व्यक्ति को दोष मत दो। न तो निराश या विषण्ण होओ और न यही सोचो कि हम ऐसी अवस्था में पड़े हैं, जहाँ से हम कभी छुटकारा नहीं पा सकते, जब तक कि कोई आकर हमें अपने हाथ का सहारा नहीं देता। हम रेशम के कीड़े के समान हैं। हम अपने आप में से ही सूत निकालकर कोष का निर्माण करते हैं और

कुछ समय के बाद उसी के भीतर कैद हो जाते हैं। कर्म का यह जाल हमीं ने अपने चारों ओर बुन रखा है। अपने अज्ञान के कारण हमें यह प्रतीत होता है कि हम बद्ध हैं, और इसलिए सहायता के लिए हम रोते-चिल्लाते हैं। पर सहायता कहीं बाहर से तो नहीं आती; वह तो हमारे भीतर से ही आती है। चाहो तो विश्व के समस्त देवताओं को पुकारते रहो, मैं भी बरसों पुकारता रहा और अन्त में देखा कि मुझे सहायता मिल रही है। पर वह सहायता मिली भीतर से। भ्रान्तिवश इतने दिन तक जो अनेक प्रकार के काम करता रहा, उस भ्रान्ति को मुझे दूर करना पड़ा। अपने चारों ओर मैंने जो जाल फेंक रखा था, उसे मुझे काट डालना पड़ा। मैंने अपने जीवन में अनेक गलतियाँ की है। पर यह स्मरण रहे कि उन गलतियों के बिना मैं आज जो हूँ, वह नहीं रहता। मेरा तात्पर्य यह नहीं कि तुम घर जाओ, और जानबूझकर गलतियाँ करो; मेरे कहने का इस प्रकार उलटा अर्थ मत लगाओ। पर जो गलतियाँ तुम कर चुके हो, उनके कारण हताश मत होओ।

हम क्यों गलतियाँ करते हैं? इसलिए कि हम दुर्बल हैं। हम दुर्बल क्यों हैं? इसलिए कि हम अज्ञानी हैं। हमें अज्ञानी कौन बनाता है? हम स्वयं ही। हम अपनी आँखों को अपने हाथों से ढ़क लेते हैं और 'अँधेरा है' 'अँधेरा है' कहकर रोते हैं। हाथ हटा लो, तो प्रकाश ही प्रकाश है। मनुष्य की आत्मा स्वभाव से ही स्वयंप्रकाश है। अत: हमारे लिए प्रकाश का अस्तित्व सदा ही है। आधुनिक वैज्ञानिक लोग क्या कहते हैं, क्या तुम नहीं सुनते? क्रमविकास का कारण क्या है - इच्छा। जीवधारी कुछ करना चाहता है, परन्तु परिस्थिति को अनुकूल नहीं पाता; इसलिए नये शरीर का निर्माण कर लेता है। यह कौन निर्माण करता है? स्वयं वही जीवधारी, उसकी इच्छाशक्ति। अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करते रहो और वही तुम्हें ऊपर उठाती जाएगी। इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। तुम पूछ सकते हो, यदि वह सचमुच सर्वशक्तिमान है, तो फिर मैं सब कुछ क्यों नहीं कर सकता? पर तुम तो केवल अपनी क्षुद्र आत्मा के सम्बन्ध में सोच रहे हो। अपनी निम्नतम जीवाणु (amoeba) की अवस्था से लेकर मनुष्य-शरीर तक इस सारी जीवन-

शृंखला पर नज़र डालो। यह सब किसने बनाया? स्वयं तुम्हारी इच्छशक्ति ने। क्या तुम उसकी सर्वशक्तिमत्ता को अस्वीकार कर सकते हो? जिसने तुम्हें इतने ऊँचे तक उठाया, वह तुम्हें और भी ऊँचा ले जा सकती है। आवश्यकता है चरित्र की, इच्छाशक्ति को सबल बनाने की।

बड़े काम में बहुत समय तक लगातार और महान प्रयत्न की आवश्यकता होती है। यदि थोड़े-से व्यक्ति असफल भी हो जाय, तो भी उसकी चिन्ता हमें नहीं करनी चाहिए। संसार का यह नियम ही है कि अनेक लोग नीचे गिरते हैं, कितने ही दु:ख आते हैं, कितनी ही भयंकर कठिनाइयाँ सामने उपस्थित होती हैं, स्वार्थपरता तथा अन्य बुराइयों का मानव-हृदय में घोर संघर्ष होता है। और तभी आध्यात्मिकता की अग्नि से इन सभी का विनाश होता है। इस जगत में भलाई का मार्ग सबसे दुर्गम तथा पथरीला है। आश्चर्य की बात है कि इतने लोग सफलता प्राप्त करते हैं। बहुत-से लोग असफल होते हैं, इसमें आश्चर्य नहीं। हज़ारों ठोकरें खाने के बाद चरित्र का गठन होता है।

अपने को शुद्ध कर लो, संसार का विशुद्ध होना अवश्यम्भावी है। पहले के किसी भी काल से अधिक, आजकल इस एक बात की शिक्षा की आवश्यकता है। हम लोग अपने विषय में कम और अपने पड़ोसियों के विषय में अधिक व्यस्त होते जा रहे हैं। यदि हम परिवर्तित होते हैं, तो संसार परिवर्तित हो जायेगा; यदि हम निर्मल हैं, तो संसार निर्मल हो जायेगा। प्रश्न यह है कि मैं दूसरों में दोष क्यों देखूँ। जब तक मैं दोषमय न हो जाऊँ, तब तक मैं दोष नहीं देख सकता। जब तक मैं निर्बल न हो जाऊँ, तब तक मैं दु:खी नहीं हो सकता।

जिस मनुष्य ने स्वयं पर नियंत्रण कर लिया है, उस पर दुनिया की कोई भी चीज़ प्रभाव नहीं डाल सकती, उसके लिये किसी भी प्रकार की गुलामी शेष नहीं रह जाती। उसका मन स्वतंत्र हो जाता है और केवल ऐसा ही व्यक्ति संसार में रहने योग्य है। बहुधा हम देखते हैं कि लोगों की संसार

के विषय में दो तरह की धारणाएँ होती हैं। कुछ लोग निराशावादी होते हैं। वे कहते हैं, "संसार कैसा भयानक है, कैसा दुष्ट है!" दूसरे लोग आशावादी होते हैं और कहते हैं, "अहा! संसार कितना सुन्दर है, कितना अद्‌भुत है!" जिन लोगों ने अपने मन पर विजय नहीं प्राप्त की है, उनके लिये यह संसार या तो बुराइयों से भरा है, या फिर अच्छाइयों तथा बुराइयों का मिश्रण है। परन्तु यदि हम अपने मन पर विजय प्राप्त कर लें, तो यही संसार सुखमय हो जाता है। फिर हमारे ऊपर किसी बात के अच्छे या बुरे भाव का असर न होगा – हमें सब कुछ यथास्थान और सामंजस्यपूर्ण दिखलायी पड़ेगा।

हमारे हृदय में प्रेम, धर्म और पवित्रता का भाव जितना बढ़ता जाता है, उतना ही हम बाहर भी प्रेम, धर्म और पवित्रता देख सकते हैं। हम दूसरों के कार्यों की जो निन्दा करते हैं, वह वास्तव में हमारी अपनी ही निन्दा है।

जगत् में जो कुछ यथार्थ उन्नति हुई है, वह प्रेम की शक्ति से ही हुई है। दोष बताकर कभी भी अच्छा काम नहीं किया जा सकता। हज़ारों वर्षों तक परीक्षा करके यह बात देखी जा चुकी है। निन्दा और तिरस्कार से कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

यदि तुम अपनी गलतियों के नाम पर, घर जाकर सिर पर हाथ रख जन्मभर रोते रहो, तो उससे तुम्हारा उद्‌धार नहीं होने का, बल्कि उससे तुम और भी दुर्बल हो जाओगे। यदि यह कमरा हज़ारों वर्षों से अन्धकारपूर्ण हो और तुम उसमें जाकर रोने धोने लगो, "हाय! बड़ा अँधेरा है! हाय! बड़ा अँधेरा है!" तो क्या उससे अँधेरा चला जाएगा? दियासलाई जलाओ, और क्षण में ही अन्धकार दूर हो जाएगा। सारा जीवन यदि तुम अफसोस करते रहो - "अरे! मैंने अनेक दुष्कर्म किये, बहुतसी गलतियाँ की," तो उससे क्या लाभ? हममें बहुतसे दोष हैं, यह किसी को बतलाना नहीं पड़ता। ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करो, एक क्षण में सब अशुभ चला जाएगा। अपने चरित्र का निर्माण करो और अपने प्रकृत स्वरुप को - उसी ज्योतिर्मय, उज्ज्वल, नित्य-शुद्ध स्वरूप को प्रकाशित करो, तथा प्रत्येक व्यक्ति में उसी आत्मा को जगाओ।

• • •